SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

भारत में अनुसूचित जनजातियों की शैक्षणिक उपलब्धिः सतत् चुनौतियाँ और मुद्दे

सरोज यादव, शोध छात्रा, **पुष्पा भारती,** पीएच–डी., शोध निर्देशिका, अर्थशास्त्र विभाग
श्री रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Authors
सरोज यादव, शोध छात्रा
पुष्पा भारती, पीएच–डी., शोध निर्देशिका
E-mail : sarojyadav8034@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 02/05/2025
Revised on : 03/07/2025
Accepted on : 12/07/2025
Overall Similarity : 00% on 04/07/2025

शोध सार

भारत में अनुसूचित जनजातियाँ (एसटी) अब भी शैक्षणिक रूप से सबसे पिछड़े समुदायों में शामिल हैं। इसका कारण ऐतिहासिक उपेक्षा, भौगोलिक अलगाव, सामाजिक–आर्थिक वंचना और मुख्यधारा की शिक्षा प्रणाली से सांस्कृतिक असंगति है। स्वतंत्रता के बाद संवैधानिक संरक्षणों, आरक्षण नीतियों और कई लक्षित कार्यक्रमों के बावजूद, उनकी साक्षरता दर, नामांकन और विद्यालय में टिके रहने की दर अन्य सामाजिक समूहों की तुलना में काफी कम है। गरीबी, भाषाई अवरोध, अपर्याप्त बुनियादी ढांचा, और स्थानीय संदर्भ से कटे पाठ्यक्रम जैसे ढांचेगत कारण स्कूल छोड़ने की दर को बढ़ाते हैं, विशेष रूप से जनजातीय बालिकाओं के बीच। यह शोधपत्र अनुसूचित जनजातियों की शैक्षणिक स्थिति की आलोचनात्मक समीक्षा करता है, पूर्व प्रयासों का मूल्यांकन करता है, शेष अंतरालों की पहचान करता है और संस्कृति–संवेदी, स्थानीय आवश्यकताओं पर आधारित और सतत शिक्षा रणनीतियों के सुझाव प्रस्तुत करता है। शोध यह तर्क देता है कि जब तक शिक्षा की योजना और क्रियान्वयन में जनजातीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी नहीं होगी, तब तक समावेशी विकास और समानता का लक्ष्य अधूरा रहेगा।

मुख्य शब्द

अनुसूचित जनजातियाँ, शैक्षणिक असमानता, भाषा अवरोध, जनजातीय शिक्षा नीति, समावेशी विकास.

प्रस्तावना

शिक्षा मानव–निर्माण और राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यक आवश्यकताओं में से एक है। यह मानव संसाधनों के विकास के लिए अपरिहार्य है। शिक्षा ज्ञान, कौशल और चरित्र प्रदान करती है। स्वतंत्रता के बाद, भारत में सरकारें राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों की

अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए पढ़ना, लिखना और अंकगणित पर जोर देते हुए साक्षरता मिशन पर अधिक निर्भर थीं। नई शिक्षा नीति की पृष्ठभूमि में, जो जल्द ही आने वाली है, यह पेपर भारत भर में जनजातियों के बीच शिक्षा के आंकड़ों और स्थिति का मूल्यांकन करने का महत्वपूर्ण प्रयास करता है। विकास का अध्ययन अलगाव में नहीं किया जाना चाहिए। विकास कुछ संपन्न व्यक्तियों के विकास का पर्याय नहीं है। जैसा कि अमर्त्य सेन (1999) ने कहा था कि जब तक मनुष्यों के बीच क्षमताओं को पर्याप्त रूप से संबोधित नहीं किया जाता है और हाशिए के समूहों द्वारा सामना किए जाने वाले अभावों को दूर नहीं किया जाता है, तब तक विकास नहीं हो सकता है। वास्तव में, उन्होंने क्षमताओं और मानवीय स्वतंत्रता पर जोर दिया, और यह स्वतंत्रता तभी प्राप्त की जा सकती है जब लोगों को राजनीतिक स्वतंत्रता, आर्थिक सुविधाएं, सामाजिक अवसर, पारदर्शिता और सुरक्षा की गारंटी दी जाए। हालाँकि ये स्थितियाँ एक–दूसरे से भिन्न हैं, लेकिन ये सभी आपस में जुड़ी हुई हैं। भारत के पास एक समृद्ध गौरवशाली विरासत है, लेकिन भारतीय आबादी के एक बड़े हिस्से को अभी भी इसका लाभ मिलना बाकी है। वे अभी भी आदिवासी समुदाय हैं जो आदिम हैं और एकांत क्षेत्र में रहते हैं (वर्मा 1996)। इंपीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, 1911 में जनजाति को "एक सामान्य नाम वाले, एक सामान्य बोली बोलने वाले, एक सामान्य क्षेत्र पर कब्जा करने वाले या कब्जा करने का दावा करने वाले परिवारों के समूह के रूप में परिभाषित किया गया है और आमतौर पर अंतर्जातीय नहीं होते हैं, हालांकि मूल रूप से ऐसा हो सकता है" (निथ्या 2014)। डी.एन. मजूमदार के अनुसार, ष्जनजाति एक सामाजिक समूह है, जिसमें क्षेत्रीय संबद्धता होती है, जो बिना किसी कार्य की विशेषज्ञता के अंतर्जातीय विवाह करता है, जनजातीय अधिकारियों द्वारा शासित होता है, वंशानुगत या अन्यथा भाषा और बोली में एकजुट होता है, अन्य जनजातियों या जातियों के साथ सामाजिक दूरी को मान्यता देता है, बिना किसी सामाजिक अपमान के, जैसा कि जाति संरचना में होता है, आदिवासी परंपराओं, विश्वासों और रीति–रिवाजों का पालन करता है, विदेशी स्रोतों से विचारों के प्राकृतिककरण के प्रति असहिष्णु होता है, सबसे बढ़कर जातीय और क्षेत्रीय एकीकरण की समरूपता के प्रति सचेत होता हैष् (वर्मा 1996)। भारत में जनजातियाँ आमतौर पर पहाड़ी क्षेत्रों, जंगलों, समुद्र के किनारे और द्वीपों में रहती हैं। उनकी जीवन शैली गैर–आदिवासियों से काफी अलग है (प्रीत 1994)। ऐसा नहीं है कि उनके समाज स्थिर हैं, लेकिन आदिवासी समाज में सामाजिक परिवर्तन की गति बहुत धीमी है यद्यपि हमारे राष्ट्रीय नेता और संविधान निर्माता आदिवासी लोगों के उत्थान के लिए प्रतिबद्ध हैं, फिर भी विकास का वांछित स्तर अभी तक हासिल नहीं हुआ है (चंद्र गुरु एट अलः 2015)।

अध्ययन का उद्देश्य

1. आदिवासियों के बीच शिक्षा के निम्न स्तर के लिए जिम्मेदार जटिल चर का अध्ययन करना।
2. विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों की प्रभावशीलता और आदिवासियों पर उनके प्रभाव की समीक्षा करना।
3. शैक्षिक अंतराल का आकलन करना और उनकी शिक्षा में सुधार के लिए उपयुक्त सुझाव देना।

अनुसंधान पद्धति

इस शोध में मुख्य रूप से जनगणना डेटा, आदिवासियों पर समिति की रिपोर्ट, आदिवासी कल्याण मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट, चयनित शैक्षिक सांख्यिकी पर रिपोर्ट और एनएसएस रिपोर्ट आदि सहित विभिन्न शोध अध्ययनों से प्राप्त द्वितीयक डेटा पर आधारित है।

साहित्य की समीक्षा

आदिवासियों के विकास और आदिवासियों में शिक्षा के विकास पर काफी साहित्य उपलब्ध है। वर्जीनिया के अनुसार औपनिवेशिक राज्य ने आदिवासियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए उन्हें सुरक्षा उपाय प्रदान करने के अलावा कुछ नहीं किया। उनका कहना है कि स्वतंत्र भारत में भी राज्य प्रायोजित शैक्षणिक संस्थानों और सरकारी सेवाओं में कुछ प्रतिशत सीटें प्रदान करने जैसे थोड़े से संशोधन के साथ यही नीति जारी रही। इन प्रावधानों के तहत, केंद्र और राज्य सरकार दोनों में आदिवासियों के लिए 7.5 प्रतिशत नौकरियां आरक्षित की गईं। इससे उनके लिए सरकारी सेवाओं का एक बड़ा पूल खुल गया है। हालांकि आरक्षण रोजगार के अवसर प्रदान करता

है, लेकिन शैक्षणिक योग्यता और आवश्यक कौशल की कमी के कारण वे नौकरियों से वंचित रह जाते हैं और कई मामलों में आरक्षित सीटें खाली रह जाती हैं। उच्च ग्रेड सेवाओं के लिए कोटा के मामले में, स्थिति और भी खराब है क्योंकि आवश्यक योग्यता वाले उम्मीदवार उपलब्ध नहीं हैं।

गौरांग रामी (2012) के शोधपत्र में गुजरात के आदिवासी जिले डांग में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति पर चर्चा की गई है। जिले में, लगभग 412 प्राथमिक विद्यालय हैंय जिनमें से 378 प्राथमिक विद्यालय जिला पंचायत द्वारा संचालित हैं। शोधपत्र का निष्कर्ष है कि अधिकांश स्कूलों के पास भवन हैं, लेकिन वे पीने के पानी और लड़के–लड़कियों के लिए अलग–अलग शौचालय जैसी अन्य आवश्यक सुविधाओं की कमी के कारण छात्राओं को आकर्षित करने में विफल रहते हैं। सामान्य शौचालय की सुविधा ने कई आदिवासी लड़कियों को 5वीं कक्षा से आगे दाखिला लेने से रोक दिया है इसलिए आदिवासी लड़कियों के बीच ड्रॉप आउट अनुपात अधिक है। एक अन्य समस्या जो आदिवासी छात्रों को स्कूल छोड़ने के लिए मजबूर करती है, वह है शिक्षा का माध्यम जो उनकी अपनी स्थानीय बोली से काफी अलग है। प्रधान और संजय कुमार (2011) का वर्णन है कि आश्रम विद्यालयों, प्राथमिक स्तर पर स्थानीय भाषा को शामिल करने और स्थानीय बोलियों में पढ़ाने जैसी विशेष पहलों के बावजूद आदिवासी अभी भी गैर–आदिवासियों से पीछे हैं। ऐसी परिस्थितियों में सरकार और नीति निर्माताओं को उनकी शैक्षिक स्थिति में सुधार के लिए सर्वोत्तम प्रयास करने चाहिए। अरुण कुमार घोष का शोधपत्र (2007) झारखंड और पश्चिम बंगाल में आदिवासी शिक्षा पर गहन साहित्य प्रदान करता है वे झारखंड में "हो" और "महाली" तथा पश्चिम बंगाल में "लोधा" जनजातियों में कम साक्षरता के कारणों पर चर्चा करते हैं। वे देखते हैं कि इन जनजातियों में महिला नामांकन अनुपात उनके पुरुषों की तुलना में बहुत कम है। प्राथमिक शिक्षा के तुरंत बाद नामांकन में और भी तीव्र गिरावट देखी गई, तथा यह प्रवृत्ति पुरुषों और महिलाओं के बीच जारी रही। खेती के मौसम में, ड्रॉप–आउट दर अधिक होती है, क्योंकि बच्चों को बुवाई, निराई, वृक्षारोपण और कटाई की गतिविधियों में अपने परिवार के सदस्यों की सहायता करनी होती है। आर्थिक कठिनाई भी आदिवासी बच्चों के ड्रॉप आउट का एक प्रमुख कारण है। शिक्षा में लैंगिक समानता प्राप्त करने के लिए लेखक ने कई सुझाव दिए हैं, जैसे माता–पिता को अपनी बेटियों को स्कूल भेजने के लिए प्रेरित करना, आदिवासी बच्चों की जरूरतों के अनुसार पाठ्यक्रम तैयार करना, लड़कियों के लिए अलग शौचालय। जनसाला अनुभव पर विनोबा गौतम का पेपर (2003), भारत सरकार और संयुक्त राष्ट्र एजेंसियों के बीच एक सहयोगात्मक कार्यक्रम है, जो विशेष रूप से वंचित समुदायों की लड़कियों और बच्चों, कामकाजी बच्चों और विशिष्ट जरूरतों वाले बच्चों के लिए सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए है। यह लगभग तीन मिलियन बच्चों को कवर करने का प्रयास करता हैय इसमें से 33 प्रतिशत आदिवासी बच्चे होंगे। जनशाला के तहत, आदिवासी बच्चों की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में सुधार के लिए कई अनुकूल हस्तक्षेप किए गए। अध्ययन का प्रस्ताव है कि चूंकि आदिवासी बच्चों में संज्ञानात्मक क्षमताएं होती हैं, इसलिए एक उपयुक्त पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धति विकसित करने की आवश्यकता है। अंत में, पेपर यह निष्कर्ष निकालता है कि आदिवासी सांस्कृतिक परिवेश में गैर–आदिवासी शिक्षा का बहुत सीमित महत्व है क्योंकि यह व्यक्तियों की जीवनशैली और आदिवासी समुदाय की जरूरतों से मेल नहीं खाती है। स्कूली शिक्षा को आदिवासी समुदायों के जीवन और जरूरतों से जोड़ने की जरूरत है।

जनजातीय परिदृश्य

भारत में जनजातीय आबादी संख्यात्मक रूप से बहुत कम है, तथा वे समूहों की एक विशाल विविधता का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे भाषा, बोलियों, शारीरिक विशेषताओं, जनसंख्या के आकार आदि के संबंध में आपस में भिन्न हैं। वे बड़े पैमाने पर अलग–थलग रहते हैं, लेकिन वे देश की लंबाई और चौड़ाई में फैले हुए हैं। संविधान से पहले, जनजातियों को विभिन्न नामों से जाना जाता था – आदिवासी, वन जनजातियाँ, पहाड़ी जनजातियाँ, आदिम जनजातियाँ, आदि। इन समूहों को ''दलित वर्ग'' में शामिल किया गया था। बाद में, 1919 की भारतीय मताधिकार समिति ने जनगणना रिपोर्ट के लिए इन समूहों के लिए एक अलग नामकरण प्रदान किया था, और 1931 में, उन्हें आदिम जनजाति के रूप में मान्यता दी गई थी। केवल 1951 के आदेश में, उन्हें अनुसूचित जनजाति (वर्मा 1996) के रूप में पहचाना गया था। 1951 में, अनुसूचित जनजातियों की संख्या केवल 212 थी, और 2011 (जनगणना) तक

उनकी संख्या बढ़कर 705 हो गई है। अपनी खुद की भाषा होने के बावजूद, वे जिस राज्य में रहते हैं, वहां की आम भाषा में बात कर सकते हैं। भारत में 270 से ज्यादा ऐसी भाषाएँ हैं (भारत शिक्षा रिपोर्ट, 2002)। 2011 की जनगणना के अनुसार, वे 10.43 करोड़ जनजातियाँ हैं जो देश की कुल आबादी का 8.6 प्रतिशत हिस्सा हैं और मैदानों से लेकर जंगलों, पहाड़ियों और दुर्गम क्षेत्रों तक की विभिन्न पारिस्थितिक और भू–जलवायु स्थितियों में देश के लगभग 15 प्रतिशत क्षेत्र पर कब्जा करती हैं। 75 जातीय समूह हैं जिन्हें विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह माना जाता है। ओडिशा राज्य में अनुसूचित जनजातियाँ सबसे ज्यादा संख्या में हैं (यानी 62 प्रतिशत)। स्वदेशी या अनुसूचित जनजाति के लोगों की सबसे बड़ी सांद्रता दो अलग–अलग भौगोलिक क्षेत्रों में पाई जाती है। अनुसूचित जनजाति की आधी से ज्यादा आबादी मध्य भारत में केंद्रित है, यानी मध्य प्रदेश (14.69 प्रतिशत), छत्तीसगढ़ (7.5 प्रतिशत), झारखंड (8.29 प्रतिशत), आंध्र प्रदेश (5.7 प्रतिशत), महाराष्ट्र (10.08 प्रतिशत), उड़ीसा (9.2 प्रतिशत), गुजरात (8.55 प्रतिशत) और राजस्थान (8.86 प्रतिशत)। अन्य जनजातीय आबादी वाले क्षेत्र उत्तर पूर्व में हैं, यानी असम, नागालैंड, मिजोरम, मणिपुर, मेघालय, त्रिपुरा, सिक्किम और अरुणाचल प्रदेश। भारत के राज्यों में, मिजोरम में अनुसूचित जनजातियों का अनुपात सबसे ज्यादा (94.43) है। इसके विपरीत, उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जनजातियों का अनुपात सबसे कम (0.57) है। भारत में, 20 राज्यों और 2 केंद्र शासित प्रदेशों में एसटी आबादी का सबसे ज्यादा संकेन्द्रण है। राष्ट्रीय औसत 8.6 प्रतिशत है।

भारत में आदिवासियों की शैक्षिक स्थिति

भारत समावेशी विकास की वकालत करता है, लेकिन शिक्षा और कौशल विकास की कमी के कारण, हाशिए पर पड़े वर्ग समावेशी विकास का हिस्सा नहीं बन पा रहे हैं। समावेशी विकास सुनिश्चित करने के लिए, संविधान ने पिछड़े वर्गों को शिक्षा और नौकरियों में आरक्षण देकर सशक्त बनाया है। इस उद्देश्य के लिए, भारत के संविधान ने एससी और एसटी को शिक्षा तक पहुँच प्रदान करने के लिए कुछ विशेष प्रावधान निर्धारित किए हैं। इन विशेष प्रावधानों को 1951 में संविधान में संशोधन के माध्यम से अपनाया गया था, और अनुच्छेद 15(4) में एक विशेष खंड जोड़ा गया था। यह खंड राज्य को एससी और एसटी के शैक्षिक विकास के लिए विशेष प्रावधान करने का अधिकार देता है (साहू 2009)। ये विशेष प्रावधान भी उनकी साक्षरता के स्तर पर प्रभावशाली प्रभाव डालने में विफल रहे हैं क्योंकि कई आदिवासियों की अपनी विशिष्ट और स्थानीय भाषा है जो उनके निवास स्थान वाले राज्य में बोली जाने वाली आम भाषा से अलग है। यह पाया गया है कि 22 प्रतिशत जनजातीय बस्तियों की जनसंख्या 100 से कम है और 40 प्रतिशत से अधिक की जनसंख्या 100 से 300 से कम है, जबकि अन्य की जनसंख्या 500 से कम है (पांडा 2011; सुजाता 2008)। 1961 में उनकी साक्षरता दर 8.5 प्रतिशत से आगे नहीं गई थी। इसी अवधि में, महिला साक्षरता दर पुरुष साक्षरता की तुलना में बहुत अधिक निराशाजनक थी, केवल 3.2 प्रतिशत। भारतीय समाज में उनके अभाव और हाशिए पर होने को देखते हुए, भारत सरकार ने अनुसूचित जनजातियों के बीच शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए एक अभिनव योजना शुरू की है, अर्थात आश्रम स्कूलों की स्थापना। आश्रम स्कूल की अवधारणा भारत भर के सभी अनुसूचित क्षेत्रों में तीसरी पंचवर्षीय योजना में शुरू हुई। इसका उद्देश्य हाशिए पर पड़े लोगों को अनुकूलित तरीके से शिक्षा को बढ़ावा देना है। आश्रम स्कूलों के अलावा, अनुसूचित क्षेत्रों में आदिवासी छात्रों के रहने और खाने के लिए छात्रावासों का निर्माण किया गया इसके बावजूद, 1971 में साक्षरता दर 11.39 प्रतिशत से आगे नहीं बढ़ पाई, क्योंकि आदिवासी बच्चों की अनुपस्थिति, ठहराव, पढ़ाई छोड़ देना और मौसमी पलायन जैसे मुद्दों की प्रकृति जटिल है। इस बीच, 1960 के डेबर आयोग ने आदिवासियों के शैक्षिक पिछड़ेपन के लिए कुछ विशिष्ट कारणों की पहचान की। ये अस्पष्ट सामान्यीकरण थे जैसे कि शिक्षकों द्वारा अपनाई गई अनुपयुक्त और अनाकर्षक शिक्षण विधियाँ आदि। इसने खराब आर्थिक स्थिति और निर्वाह अर्थव्यवस्था जैसी अन्य समस्याओं को भी छुआ। ऐसी स्थिति में, बच्चों को माता–पिता और दूसरों के साथ काम करके परिवार की आय को पूरक करने के लिए आर्थिक संपत्ति के रूप में देखा जाता है। जीवन की सख्त जरूरतों की स्थिति में, शिक्षा आदिवासी परिवार के लिए विलासिता का विषय बन जाती है। इन सभी कारकों ने आदिवासी शिक्षा के लिए एक व्यापक नीति तैयार करने में योगदान दिया है। इस पृष्ठभूमि में, ढेबर आयोग ने पिछड़े क्षेत्रों में सभी आदिवासी बच्चों को मध्याह्न भोजन, कपड़े, मुफ्त किताब,

पढ़ने और लिखने की सामग्री आदि प्रदान करने की सिफारिशें कीं। आयोग ने स्थलाकृतिक कारकों को पहचानते हुए उन इलाकों में स्कूल खोलने की सिफारिश की जहाँ कम से कम 30 स्कूल जाने वाले बच्चे हों, हालाँकि एक मील के भीतर एक स्कूल होना चाहिए। आयोग ने तब आदिवासी सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के अनुरूप स्कूलों के समय, छुट्टियों और अवकाशों को समायोजित करने का सुझाव दिया। इसने स्कूलों में आदिवासी संस्कृति का माहौल बनाने का भी प्रस्ताव रखा (आदिवासी कल्याण मंत्रालय, उच्चाधिकार प्राप्त समिति और भारत सरकार की रिपोर्ट 2014: 158–159)। कोठारी आयोग ने भी इस बात पर जोर दिया है कि आदिवासी बहुत जोर और ध्यान के साथ शिक्षा के हकदार हैं। इसे देखते हुए कोठारी आयोग ने ढेबर आयोग की सिफारिशों का समर्थन करते हुए कहा कि 1975–76 तक सभी आदिवासी बच्चों को पांच साल की प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने के लिए ''गहन प्रयास'' किए जाने चाहिए। आदिवासियों के बीच साक्षरता दर हासिल करने के लिए आयोग ने माता–पिता को भी साथ–साथ शिक्षित करने की आवश्यकता का सुझाव दिया। शुरू में आदिवासी शिक्षा पर गहन प्रयासों के बावजूद साक्षरता दर 1971 में 11.3 प्रतिशत से मामूली रूप से बढ़कर 1981 में 16.35 प्रतिशत हो गई, जबकि महिला साक्षरता में राहत के कोई संकेत नहीं थे और यह 1984 में एकल अंक यानी 8.04 प्रतिशत पर रही। यह दर्शाता है कि आजादी के पहले तीन दशकों में आदिवासी शिक्षा का विकास बहुत धीमी गति से हुआ था, क्योंकि स्कूल छोड़ने की दर बहुत अधिक थी और आदिवासी और गैर–आदिवासियों के बीच अंतर बढ़ता जा रहा था। इसके कारण आदिवासियों के बीच उच्च शिक्षा भी बुरी तरह प्रभावित हुई।

साक्षरता दर कम को पहचानते हुए पांचवीं पंचवर्षीय योजना में शुरू की गई आदिवासी उप–योजना जिसने बच्चों और महिलाओं में शिक्षा को बढ़ावा देने को भी प्राथमिकता दी थी (खाक्सा 2011; सुजाता 2008)। इन प्रयासों के कारण, चौथे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण (1978) ने आदिवासी शिक्षा पर कुछ कठोर तथ्यों को उजागर किया है कि 25,000 से अधिक आदिवासी बस्तियों में कोई स्कूल नहीं है। जहां तक माध्यमिक स्कूली शिक्षा का सवाल है, 82.18 प्रतिशत आदिवासी आबादी आठ किलोमीटर की पहुंच के भीतर थी, और उनमें से केवल 18.8 प्रतिशत की उच्चतर माध्यमिक विद्यालय तक पहुंच थी (आदिवासी कल्याण मंत्रालय, उच्चाधिकार प्राप्त समिति, भारत सरकार की रिपोर्टर्ू 2014)। छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान, यह अनुमान लगाया गया था कि लगभग 56 प्रतिशत (49 प्रतिशत लड़के और 70 प्रतिशत लड़कियां) आदिवासी बच्चों को अभी भी प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करनी है। इस चुनौती को देखते हुए, प्राथमिक स्तर पर ठहराव को कम करने और उच्च स्तर पर वंचित वर्गों की भागीदारी बढ़ाने के उद्देश्य से 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) तैयार की गई थी वर्ष 1985–90 में भी 1990 तक 6–14 वर्ष आयु वर्ग के सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण को 'सर्वोच्च प्राथमिकता' दी गई थी। जनजातीय समस्याओं की समझ के आधार पर, NEP ने कई उपायों की सिफारिश की जैसे कि प्रारंभिक चरण में जनजातीय भाषा में पाठ्यक्रम विकसित करना और शिक्षण सामग्री तैयार करना, क्षेत्रीय भाषाओं में बदलाव की व्यवस्था, प्रभावी शिक्षण के लिए मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा का महत्व और स्थानीय रूप से प्रासंगिक सामग्री और पाठ्यक्रम को शामिल करने के अलावा स्थानीय बोलियों में पाठ्य पुस्तकों के स्थानीय उत्पादन पर जोर देना। इन सभी पहलों ने एसटी के प्राथमिक शिक्षा ग्राफ को निम्न से उच्च में बदल दिया है, और इसलिए इसने उच्च शिक्षा में परिणाम दिखाए हैं। परिणाम जो भी हों, एसटी और गैर–एसटी आबादी के बीच का अंतर 1991 और 2011 के बीच 22.21 से 14.03 प्रतिशत तक दोहरे अंक में बना हुआ है, और यह (महिला साक्षरता सहित) राष्ट्रीय औसत से नीचे गिर रहा है। 2011 की जनगणना के आंकड़े बताते हैं कि एसटी का शैक्षिक विकास विभिन्न राज्यों के बीच काफी असमानता है। डेटा से पता चलता है कि आदिवासी आबादी की अधिक सांद्रता वाले कुछ राज्य बहुत अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं। वे हैं मिजोरम (91. 5 प्रतिशत), नागालैंड (80.0 प्रतिशत), मणिपुर (77.4 प्रतिशत), और मेघालय (74.5 प्रतिशत)। जबकि अधिक संख्या में आदिवासी बस्तियों वाले कुछ राज्य बहुत कम प्रदर्शन कर रहे हैं। वे हैं झारखंड (57.1 प्रतिशत), मध्य प्रदेश (50. 6 प्रतिशत), उड़ीसा (52.2 प्रतिशत), राजस्थान (52.2 प्रतिशत), और आंध्र प्रदेश (49.2 प्रतिशत)।

अनुसूचित जनजातियों के सशक्तिकरण पर कार्य समूह (2007) ने स्पष्ट रूप से संकेत दिया है कि एक तरफ बड़े पैमाने पर औद्योगिकीकरण और खनिज संसाधनों का दोहन तथा दूसरी तरफ सिंचाई बांधों के निर्माण ने आदिवासी लोगों को उनकी भूमि से बेदखल कर दिया है। विस्थापन ने स्कूल जाने वाले बच्चों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है और अक्सर, उनके स्कूल छोड़ने का कारण भी बना है। सामाजिक–सांस्कृतिक प्रथाओं या समाजीकरण ने भी आदिवासी बच्चों की शिक्षा को सीधे प्रभावित किया है। जैसा कि जाक्सा (2011) ने देखा कि पारंपरिक आदिवासी समाज औपचारिक शिक्षा से अवगत नहीं था। यह ईसाई मिशनरियाँ ही थीं जिन्होंने आदिवासी समाज में शिक्षा की इस विदेशी घटना को पेश किया। चूँकि स्कूल और उसका वातावरण पारंपरिक आदिवासी परिवेश से अलग था, इसलिए युवा आदिवासी बच्चे उसमें रहना नहीं चाहते थे। स्कूल में प्रवेश करने से एक नया और बाहरी वातावरण मिलता है जिसमें बच्चा समायोजित नहीं हो सकता है साथ ही, चूँकि ज्ञान प्रदान करने वाले लोग उनके समाज के लिए अजनबी थे, इसलिए आदिवासी छात्र सहज महसूस नहीं करते। आदिवासी समाज में उच्च ड्रॉप–आउट दर की गंभीर समस्या भी काफी हद तक इस घटना से जुड़ी हुई है। 2001–02 में प्राथमिक, उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर आदिवासी बच्चों की स्कूल छोड़ने की दर सामान्य आबादी की तुलना में बहुत अधिक थी। 2005–06 से 2011–12 की अवधि के लिए स्कूल छोड़ने की दर के आंकड़े एक घटती प्रवृत्ति और इसलिए सभी स्तरों पर स्कूल जाने वाले आदिवासी बच्चों की स्थिति में सुधार दर्शाते हैं। 2005–06 से 2011–12 के दौरान, कक्षा 1–5 के सभी बच्चों के लिए अखिल भारतीय ड्रॉपआउट दर में 3.4 प्रतिशत और आदिवासी बच्चों के लिए 4.5 प्रतिशत की गिरावट आई।

निष्कर्ष और सुझाव

भारत के आदिवासी समुदाय दूरदराज और दुर्गम इलाकों में रहते हैं, जहाँ जंगलों और प्राकृतिक संसाधनों पर उनकी आजीविका निर्भर है। इन क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति और संसाधनों पर निर्भरता के कारण उनका बाहरी दुनिया से संपर्क सीमित होता है। ब्रिटिश शासन के दौरान विकास के नाम पर इन इलाकों को राजस्व संग्रह के लिए खोला गया और भूमि नीति ने आदिवासियों को उनकी जमीनों से बेदखल कर दिया। इससे व्यापक असंतोष फैला और आदिवासियों ने कई बार विद्रोह किया। स्वतंत्रता के बाद भी योजनाकारों ने उनकी संस्कृति को समझे बिना नीतियाँ बनाई, जिससे शोषण और बढ़ गया।

शिक्षा आदिवासी समुदायों के सामाजिक–आर्थिक उत्थान का मुख्य माध्यम हो सकती है। हालांकि, सर्व शिक्षा अभियान के बावजूद केवल 88.46 प्रतिशत आदिवासी परिवारों के पास 1 किमी के भीतर प्राथमिक विद्यालय हैं। ड्रॉपआउट दर घट रही है, लेकिन मातृभाषा में शिक्षा, स्थानीय शिक्षक नियुक्ति, रात्रि विद्यालय, वयस्क शिक्षा केन्द्र जैसे प्रयासों की अब भी आवश्यकता है। आश्रम स्कूलों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए और नामांकन को आसान बनाया जाना चाहिए।

आईआईटी और आईआईएम जैसे संस्थानों को भी आदिवासी छात्रों तक पहुँचना चाहिए और उनके साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए। शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 को सफल बनाने के लिए शिक्षकों की संख्या और गुणवत्ता में सुधार जरूरी है। राज्य शिक्षा विभाग को जवाबदेह बनाते हुए प्राथमिक शिक्षा और कौशल विकास को एक साथ आगे बढ़ाया जाना चाहिए।

पाठ्यक्रम में आदिवासी संस्कृति, लोककथाएँ, संगीत, नृत्य और स्थानीय खेलों को शामिल करने से बच्चों में आत्मविश्वास बढ़ेगा और विद्यालय में उनकी भागीदारी में सुधार होगा। आदिवासी साहित्य और ज्ञान को संरक्षित करने के लिए सांस्कृतिक शोध संस्थानों की स्थापना आवश्यक है। आदिवासी और गैर–आदिवासी दोनों को आदिवासी इतिहास पढ़ाना पारस्परिक समझ को बढ़ाएगा। आईटीडीए, आईटीडीपी और सूक्ष्म परियोजनाओं को आदिवासी विद्यालयों को सहयोग देना चाहिए ताकि अधिक बच्चों को जोड़ा जा सके और ड्रॉपआउट को रोका जा सके।

संदर्भ सूची

1. Basu, S. (2000) Dimensions of tribal health in India, *Health and Population: Perspectives and Issues,* 23(2), 61–70.
2. Behera, A. K. (2015) Primary education among tribal people of Mayurbhanj district of Odisha: An evaluative study, *International Journal of Humanities and Social Science Invention,* 4(2), 43–54.
3. Bhowmik, S. K. (1998) Development perspective for tribals, *Economic and Political Weekly,* 23(20), 1005–1007.
4. Burman, B.K.R. (2009, October 17). What has driven the tribals of Central India to political extremism?, *Mainstream Weekly,* 47(44). Retrieved from https://www.mainstream weekly.net/article1704.html, Accessed on 03/03/2025.
5. Chandra Guru, B.; Nayak, R.; & others (2015) *Tribal Development in India: The Contemporary Debate,* Rawat Publications, New Delhi.
6. Gautam, V. (2003) *Janasala Experience: A Case for Quality Education Among Tribals,* National Institute of Educational Planning and Administration, New Delhi.
7. Ghosh, A. K. (2007) Tribal Education in Jharkhand and West Bengal: A Comparative Study, *Journal of Indian Education,* 33(1), 45–54.
8. Government of India (2014) Report of the High-Level Committee on Socio-Economic, Health and Educational Status of Tribal Communities of India, Ministry of Tribal Affairs, New Delhi.
9. India Education Report (2002) National Institute of Educational Planning and Administration, NIEPA, New Delhi.
10. Kumar, P.; & Kumar, S. (2011) Tribal Education in India: A Study of Ashram Schools in Maharashtra, *International Journal of Multidisciplinary Research,* 1(8), 34–40.
11. Kumar, R.; Das, S.; Sengupta, A.; & Rafique, A. (2003) State of Primary Education in West Bengal, *Economic and Political Weekly,* 38 (22): 2159-2164.
12. Ministry of Tribal Welfare (2014) 'Report of the High-Level Committee on Socio Economic, Health and Educational Status of Tribal Communities of India, Ministry of Tribal Affairs, Government of India, New Delhi, p. 154- 190.
13. National Council of Educational Research and Training (NCERT) (1967) Kothari Commission Report of the Education commission 1964-66, Summary of Recommendations, New Delhi, p. 70.
14. Nithya, N.R. (2014) Globalization and the Plight of Tribals: In the Case of Kerala, India, *The Dawn Journal,* 3 (1): 727-758.
15. Nithya, S. (2014) Tribal Education in India: Issues and Concerns, *International Journal of Research in Humanities and Social Sciences,* 2(6), 50–56.
16. Panda, K. C. (2011) Education of the Scheduled Tribes in India: A Study with Reference to Odisha, *Indian Journal of Social Development,* 11(2), 267–280.
17. Planning Commission (2007) Report of the Working Group on Empowerment of Scheduled Tribes for the Eleventh Five Year Plan (2007-12), Government of India, New Delhi.

18. Preet, R. (1994) *Tribal Education in India,* Commonwealth Publishers, New Delhi.

19. Rami, G. (2012) Status of Primary Education in the Tribal District of Dang, Gujarat, *International Journal of Research in Commerce, Economics & Management,* 2(5), 85–89.

20. Sahoo, N. (2009) Education Among Scheduled Tribes in India: A Long Way to Go, *Journal of Social Inclusion Studies,* 15(1), 55–68.

21. Sen, A. (1999) *Development as Freedom,* Oxford University Press, Oxford.

22. Sujatha, K. (2008) Primary Education for Tribal Children: A Case Study, National Council of Educational Research and Training (NCERT), New Delhi.

23. Varma, R. (1996) *Indian Tribes: Development and Inequality,* Rawat Publications, Jaipur.

24. Xaxa, V. (2011) Education and the Scheduled Tribes in India, *Indian Journal of Social Development,* 21(3), 379–391.

****